डॉ. अनिरुद्ध प्रसाद
हिन्दी विभाग
महाराजा कॉलेज, आरा

रीतिकाल

प्रश्न: रीतिकालीन काव्य के भाषापक्ष की विवेचना कीजिए।

उत्तर: रीतिकाल की काव्य भाषा मूलतः ब्रजभाषा थी। इस युग में रीति ग्रंथों की रचना बहुतायत में हुयी। सैकड़ों कवियों द्वारा भाषा का परिमार्जन हुआ। रीतिकाल के काव्य के मुख्य प्रवृतियां निम्नलिखित थी —
(1) रीति निरूपण (2) श्रृंगारिकता (3) राज प्रशस्ति तथा नीति व वीर काव्य, भक्ति काव्य।

"रीति काल में एक प्रभाव की पूर्ति हो जानी चाहिए थी, पर नहीं हुयी। जिस समय सैकड़ों कवियों द्वारा भाषा परिमार्जित हो रही थी, उसी समय व्याकरण द्वारा इसकी व्यवस्था होनी चाहिए थी कि उस च्युत संस्कृति का दोष निवारण होता निराकरण होता तो ब्रजभाषा काव्य में थोड़ा बहुत सर्वत्र पाया जाता है। नहीं तो वाक्य दोषों का पूर्ण रूप से निरूपण होता जिससे भाषा में कुछ और सफाई आती।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 164)

इस काल में थोड़े से कवि ऐसे भी थे जिनकी वाक्य-रचना सुव्यवस्थित पायी जाती है। यदि शब्दों के रूप में स्थिर हो जाते और शुद्ध रूपों का प्रयोग पर जोर दिया जाता तो शब्दों को तोड़-मरोड़ कर विकृत करने का साहस कवियों को न होता।

भाषा की गड़बड़ी एक कारण ब्रज और अवधि इन दोनों काव्य भाषाओं के कवि इच्छानुसार सम्मिश्रण भी था। यद्यपि एक सामान्य साहित्यिक भाषा किसी विशेष प्रदेशों तक ही सीमित नहीं थी, वह अपना ढाँचा बराबर बनाए हुए थी। सूरदास की भाषा में यत्र तत्र पूरबी बोली का प्रयोग मिलता है। जैसे — मोर, हमार, दीन, कीन आदि। बिहारी की भाषा में भी कीन, दीन आदि से खाली नहीं है। रीति ग्रंथों का विकास अधिकतर अवध प्रदेश में हुआ है। इस काल में काव्य भाषा की भाषा ब्रजभाषा और अवधि के प्रयोग अधिकतर मिलते हैं। इस बात का लक्ष्य किसी-किसी कवि ने किया है। कवि दास ने इस संबंध में अपने काव्य में दृष्टिपात किया है। मिली-जुली भाषा के प्रमाण में दास जी कहते हैं — तुलसी और गंग तक, जो कवियों के शिरोमणि हुए हैं, ऐसी भाषा का व्यवहार किया है। दास जी ने काव्य भाषा का जो रूप निर्माण किया वह कोई दो सौ वर्षों की काव्य-परंपरा पर्यालोचन के उपरांत।

अतः कवि जी ने अपने काव्य स्वरूप का निर्माण बड़ी क्षमता से किया है। उन्होंने ब्रजभाषा को व्यवस्था ही कहा है जिसमें और भाषाओं के शब्दों का मेल हो। भाषा संबंधी अधिक मीमांसा न होने के कारण कवियों ने अपने को अन्य बोलियों के शब्दों तक ही परिमित न रखा, उनके कारक के चिह्नों और क्रिया के रूपों का भी मनमाना व्यवहार करते रहे। केशव ने शौक कर्म की दृष्टि से करते थे किसी सिद्धांत दृष्टि के कारण नहीं। 'करना' के भूतकाल के लिए वे छंद की आवश्यकतानुसार 'कियो', 'कीनो', 'करयो' आदि का प्रयोग करते थे। उससे भाषा को वह स्थिरता प्राप्त न हो सकी जो कि किसी साहित्यिक भाषा के लिए आवश्यक है।

भक्तिकाल की प्रारंभिक अवस्था में ही मुसलमानों के संसर्ग के कारण फारसी के शब्दों के व्यवहार मिलने लगते हैं। नामदेव और कबीर आदि की बात ही क्या, तुलसी ने भी 'गनी-गरीब', 'साहब', 'उमरदराज' आदि बहुत से शब्दों का प्रयोग किया है। फिर मुसलमान राज स्थापित हो जाने के बाद इस तरह के शब्दों का प्रयोग दिनों-दिन बढ़ता ही गया। राजा-महाराजाओं के दरबार में भी दरबार में विदेशी शिष्टता और सभ्यता के व्यवहार का अनुकरण हुआ और फारसी के मजेदार शब्द वहाँ चलने और सुनाई देने लगे। अतः भाट या कवि लोग आयुष्मान और जय-जयकार की तरह अपने को भी ... दरबार में खड़े होकर 'उमरदराज महाराज तेरी चाहिए' सुनाने लगे।

यह तो हुई व्यावहारिक भाषा की बात। फारसी काव्य शब्दों को भी थोड़ा बहुत कवियों ने अपनाया। रीतिकाल में ऐसे शब्दों की संख्या कुछ और बढ़ी। पर अपनी भाषा की स्वाभाविक धारणा रखने वाले उत्कृष्ट कवियों ने ऐसे शब्दों को बहुत कम स्थान दिया। किंतु परंपरागत साहित्य से कम संपर्क रखने वाले सामान्य कवियों ने कहीं-कहीं चुनकर ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जिन्हें देखकर शिष्टों को एक प्रकार से विरक्ति होती है और उन कवियों की रचना गीतों की तरह लगती है। कुछ कवियों ने इश्क की शायरी की पूरी अलंकार सामग्री तक उठाकर रख ली और जिनके भाव भी बँध गए। इसलिए कवि में यह यह भाव अत्यधिक भावों में पायी जाती है। P.T.O

बिहारी जैसे उत्कृष्ट कवि भी यद्यपि फारसी भावों के प्रभाव से बच नहीं सके। उन्होंने उन भावों को अपने देशी साँचे में ढाल लिया जिससे वे खटकते क्या सहसा लक्ष्य भी नहीं होते हैं। उनके विरह ताप की अनुभूति में दूर की सूझ और नाजुक ख्याली बहुत कुछ फारसी की शैली है, पर बिहारी रस भंग करने वाले कवि नहीं थे।

रीतिकालीन काव्य की भाषा को समझने के लिए उस काल के कुछ विशिष्ट कवियों की भाषा पर विचार करने की जरूरत है। बिहारी का रीति साहित्य में एक अपना स्थान है। शुक्ल जी ने बिहारी के संदर्भ में लिखा है— "जिस कवि में कल्पना की समाहार शक्ति के साथ भाषा की समाहार शक्ति जितनी ही अधिक होगी उतना ही वह मुक्तक की रचना करने में सफल होगा, यह क्षमता बिहारी में पूर्ण रूप से वर्तमान थी। इसी से वे छोटे-छोटे छंद में इतना रस भर सकते थे।"

बिहारी की भाषा चलती होने पर साहित्यिक है। काव्य रचना व्यवस्थित है। शब्दों का रूप व्यवहार एक निश्चित प्रणाली पर है। भूषण और देव ने शब्दों का बहुत अंग-भंग किया है और कहीं-कहीं गढ़न्त शब्दों का भी प्रयोग किया है। बिहारी की भाषा इन दोषों से मुक्त है।

रीतिकाल के प्रतिनिधि कवियों में पद्माकर को छोड़ और किसी कवि में मतिराम की तरह चलती भाषा की व्यंजना नहीं मिलती। बिहारी की प्रसिद्धि का कारण उनका वाग्वैदग्ध्य है। दूसरी बात, उन्होंने केवल दोहे कहे हैं, इसमें नव-सौंदर्य नहीं है।

भूषण की कविता में ओज है, पर वह अधिकतर अव्यवस्थित है। व्याकरण का उल्लंघन सर्वत्र मिलता है। उन्होंने शब्दों के रूप भी बिगाड़े हैं। पर उनकी कवित्त इन दोषों से मुक्त है। देव कुछ बड़े मजमून और पेचीले हौसला बाँधते थे, पर अनुप्रास के आडम्बर के कारण मध्य को कीचड़ में फँसा देते थे। भाषा में स्निग्ध प्रवाह न आने की वजह यह भी था। वे शब्दों को तोड़ते और मरोड़ते थे और वाक्य भी अस्त-व्यस्त रहता था। दास जी की कविता में साहित्यिक परिमार्जित भाषा थी उनमें शब्दाडम्बर नहीं था। वे शब्द चमत्कार नहीं करते बल्कि उनके काव्य में भावपक्ष लोगों का रंजन करता था।

P.G. Semester-1
CC - 2
"Riti Kal ki Bhasha"